सामाजिक चरित्र के नैतिक उत्थान में जैनधर्म के दश लक्षणों को प्रासंगिक उपयोगिता

—प्रो० चन्द्रशेखर राय
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
बी० एस० एस० कॉलेज,
बचरी, पीरो, भोजपुर, बिहार

आत्म-स्वरूप की ओर ले जानेवाले और समाज को संधारण करने वाले विचार एवं प्रवृतियाँ धर्म हैं।[1] दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान भौतिक जगत् के नियमों का अनुसन्धान करता है, उसी प्रकार धर्म नैतिक एव तात्विक जगत् के आन्तरिक नियमों का अन्वेषण करता है। दोनों ही अपने-अपने ढंग से मनुष्य जगत के लिए मोक्ष का द्वार प्रशस्त करते हैं। अतः जो प्राणियों को संसार के दुःख से उठा कर उत्तम सुख (वीतराग सुख) में धारण करे उसे धर्म कहते हैं।[2]

संसार के प्राचीनतम धर्मों में जैन धर्म भी एक है। यह विश्व का एक अति प्राचीन तथा स्वतन्त्र धर्म है। यह स्मरणातीत काल से इस भारतभूमि पर अपना विकास एवं विस्तार कर रहा है। वर्तमान युग में भी इसकी प्रासंगिक उपयोगिता ज्यों की त्यों है। जैन-दर्शन में राग-द्वेष रूप दुर्भावों से उत्पन्न मानसिक अवस्थाओं के उपशमन के लिए दस प्रकार के धर्मों का निरूपण किया गया है। इनका आचरण करने से आत्मा में कर्म का प्रवेश रुक जाता है। ये दस धर्म निम्नलिखित हैं—

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यत्ब्रह्मचर्याणि धर्मः।[3]

अर्थात्— उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप-त्याग, आकिंचन्य, और ब्रह्मचर्य—ये दस उत्तम धर्म हैं। इन दस धर्मों का सामान्य परिचय इस प्रकार है—

(१) **उत्तम क्षमा**—सहनशीलता अर्थात् क्रोध न करना और साथ ही उत्पन्न क्रोध को विवेक एवं नम्र भाव से दबा डालना ही उत्तम क्षमा है। दूसरे शब्दों में क्रोध की स्थितियों में भी मन के संयम को विकृत न होने देना उत्तम क्षमा है, जिस क्षमा से कायरता का बोध हो, आत्मा में दीनता का अनुभव हो, वह धर्म नहीं है, बल्कि क्षमाभास है, दूषण है। मन पर विजय पाना बहुत बड़े साहसी और वीर पुरुष का कार्य है। शक्ति के अभाव के कारण बदला न लेना क्षमा नहीं है। क्षमा के लिए जीव में निम्नलिखित भावों का होना अनिवार्य बताया गया है—

(१) क्रोधोत्पन्न स्थिति में अपने में क्रोध का कारण ढूंढना,

(२) क्रोध से होने वाले दोषों का चिन्तन करना,

(३) दूसरे के द्वारा अपमान किए जाने पर नासमझ समझकर बदले की भावना का परित्याग करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) दूसरे के क्रोध को अपने कर्म का परिणाम समझना एवं

(५) क्षमा से उत्पन्न गुणों का विचार करना।

इन सब भावों से सुशोभित क्षमा के द्वारा मन का संयम होता है, अहिंसा की भावना जागृत होती है। अतः जैनाचार्यों ने इसको उत्तम धर्म की संज्ञा प्रदान की है।

(२) **उत्तम मार्दव**—मार्दव का अर्थ है—मृदुता, कोमलता, विनयभाव, मान का त्याग। कुल, रूप, जाति, ऐश्वर्य, विज्ञान, तप, बल और शरीर आदि की किंचित् विशिष्टता के कारण आत्मस्वरूप को न भूलना एवं इनका मद न चढ़ने देना ही उत्तम मार्दव है। अहंकार दोष है और स्वाभिमान गुण। अहंकार में दूसरे का तिरस्कार छिपा है और स्वाभिमान में दूसरे के मान का सम्मान है। अतः अभिमान न करना एवं मन में हमेशा मृदुभाव रखना उत्तम मार्दव के अन्तर्गत आता है।

(३) **उत्तम आर्जव**—मन,वचन और काय की कुटिलता को छोड़ना—उत्तम आर्जव कहलाता है, जो विचार हृदय में स्थित है, वही वचन में रहता है तथा वही बाहर फलता है अर्थात्—शरीर से भी तदनुसार कार्य किया जाता है, यह आर्जव है। दूसरे शब्दों में मायाचारी परिणामों को छोड़कर शुद्ध हृदय से चरित्र का पालन करना उत्तम आर्जव धर्म है। जो मन में हो, वही वचन में और तदनुसार ही शरीर की चेष्टा हो, जीवन व्यवहार में एकरूपता हो। इस प्रकार मायाचार का त्याग, ऋजुता और सरलता ही उत्तम आर्जव धर्म है।

(४) **उत्तम शौच**—सुचिता, पवित्रता, निर्लोभ वृत्ति, प्रलोभन में नहीं फँसना आदि उत्तम शौच धर्म माना गया है। लोभादि कषायों का परित्याग कर पाप वृत्तियों में मन न लगाना उत्तम शौच कहलाता है। अर्थात् यह पूर्ण निर्लोभता की स्थिति है।

(५) **उत्तम सत्य**—भारतीय दर्शन के अनुसार सत्य का अर्थ है—असत्य का परित्याग। सत्य का अर्थ सुनृत बताया गया है। सुनृत का अर्थ है—वह सत्य जो प्रिय एवं हितकारी हो। उत्तराध्ययन सूत्र में क्रोध, लोभ, हास्य, भय एवं प्रमाद आदि इन झूठ बोलने के कारणों के मौजूद रहने पर भी मन-वचन-काय तथा कृत-कारित-अनुमोदना से कभी भी झूठ न बोलकर सावधानीपूर्वक हितकारी, सार्थक और प्रिय वचनों को ही बोलना सत्य कहा गया है।[4]

इसी प्रकार निरर्थक और अहितकर बोला गया वचन सत्य होने पर भी त्याज्य है। जैनधर्म दर्शन में सत्य की पांच भावनाओं का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है—

(१) वाणी विवेक, (२) क्रोध त्याग, (३) लोभ त्याग (४) भय त्याग और (५) हास्य त्याग।

(६) **उत्तम संयम**—संयम मानवीय जीवन का एक अति महत्वपूर्ण प्रत्यय है। सामान्य रूप से मन, वचन और काय का नियमन करना अर्थात् विचार, वाणी, गति और स्थिति आदि में सावधानी करना संयम है। गोम्मटसार में संयम का स्वरूप स्पष्ट करते हुए बताया गया है—

व्रतसमितिकषायाणां दण्डानां तपेन्द्रियाणां पंचानाम्।
धारणपालन निग्रहत्यागजण: संयमो भणित: ॥[5]

अर्थात्—अहिंसा, अचौर्य, सत्य, शील (ब्रह्मचर्य),अपरिग्रह इन पांच महाव्रतों का धारण करना ईर्या भाषा एषणा आदान निक्षेपण उत्सर्ग इन पांच समितियों का पालना, क्रोधादि चार कषायों का निग्रह करना, मन, वचन, कायरूप दण्ड का त्याग करना तथा पाँच इन्द्रियों का जय, इसको संयम कहते हैं।

जैनाचार्यों ने संयम के निम्नलिखित १७ भेदों की चर्चा की है—[6] पाँच अव्रतों (हिंसा,झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह) का त्याग। पांच इन्द्रियों (स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र और चक्षु) का निग्रह, चार कषायों (क्रोध, मान, माया और लोभ) का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय तथा मन, वचन एवं काय की प्रवृत्तियों का त्याग। कहीं-कहीं पर भिन्न-भिन्न तरह के संयम के १७ प्रकारों का उल्लेख भी मिलता है, यथा[7]—पांच स्थावर और चार त्रस—इन नव के विषय में संयम, प्रेक्ष्य संयम, उपेक्ष्य संयम, अपह्रृत्य संयम, प्रमृज्य संयम, काय संयम, वाक् संयम, मनःसंयम और उपकरण संयम। डॉ० सागरमल जैन के अनुसार[8] जैन और गीता के आचार-दर्शन संयम के प्रत्यय को मुक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं। संयम का अर्थ है—मर्यादित या नियमपूर्वक जीवन, संयम और मानव-जीवन ऐसे घुले-मिले तथ्य हैं कि उनसे परे सुव्यवस्थित जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।

यों सभी मर्यादाओं का पालन करना संयम नहीं है लेकिन मर्यादाओं का पालन स्वेच्छा से किया जाता है तो उनके पीछे अव्यक्तरूप में संयम का भाव निहित रहता है। सामान्यतया वे ही मर्यादाएं संयम कहलाती हैं जिनके द्वारा व्यक्ति आत्मविकास और परमसाध्य की प्राप्ति करता है।

(७) **उत्तम तप**— मलिन वृत्तियों को निर्मूल करने के उद्देश्य से अपेक्षित शक्ति की साधना के लिये किया जाने वाला आत्मदमन उत्तम तप है। दूसरे शब्दों में कर्मक्षय के लिये तथा समुचित आध्यात्मिक बल की साधना के लिए जीव को जिन उपायों का सहारा लेना पड़ता है—वे सब तप कहलाते हैं। इसके मुख्यतः दो भेद हैं—(१) बाह्य तप और (२) आभ्यन्तर तप। पुनः इन दोनों प्रकार के तपों के ६, ६ प्रकार बताये गये हैं, यथा—

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः।[9]

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम्।[10]

अर्थात्—अनशन, अवमौदर्य, वृत्ति-परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन एवं काय-क्लेश—इस प्रकार 'बाह्य' तप के छः भेद हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान—ये छः भेद आभ्यन्तर तप के हैं। इस तरह तप के कुल १२ भेद हो जाते हैं। इन बारहों प्रकार के तपों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

अनशन—सब प्रकार के आहारों का परित्याग करना अनशन तप कहलाता है। इसके दो भेद हैं—इत्वरिक और यावत्कथित।

अवमौदर्य—अपनी भूख से कम आहार ग्रहण करना अवमौदर्य तप या ऊनोदरी तप कहलाता है।

वृत्ति-परिसंख्यान—विविध वस्तुओं में कम लालच रखना वृत्ति-परिसंख्यान तप कहलाता है।

रसपरित्याग—घृतादि विशेष पौष्टिक एवं मद्यादि विकारी वस्तुओं का त्याग तथा मिष्टादि रसों का नियमन करना रस परित्याग तप कहलाता है।

विविक्त-शय्यासन—बाधा रहित एकान्त स्थान में वास करना विविक्त-शय्यासन तप कहलाता है।

कायक्लेश—ठण्ड, गर्मी, वर्षा आदि बाधाओं को सहना एवं विविध आसनादि द्वारा कष्ट सहन करने को काय-क्लेश तप कहा जाता है।

प्रायश्चित्त—दोष की विशुद्धि के लिए जो क्रिया की जाती है उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। इसके निम्नलिखित नौ भेद किये हैं—(१) आलोचन (२) प्रतिक्रमण (३) तदुभय (४) विवेक (५) व्युत्सर्ग (६) तप (७) छेद (८) परिहार (९) उपस्थापन।[11]

विनय—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और उपचार की साधना में विशेष रूप से प्रवृत्त होना विनय तप कहलाता है। इसके भी यथाक्रम से चार भेद हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और उपचार।

वैयावृत्य—सत्पुरुषों के दुःख-दर्दों को दूर करने के लिए सेवा आदि करना वैयावृत्य तप कहलाता है। इसके भी दस भेद बतलाए गए हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और समनोज्ञ की वैयावृत्य।

स्वाध्याय—उचित समय एवं परिस्थितियों में अध्ययन करने को स्वाध्याय तप कहते हैं। जैनाचार्यों ने इसके निम्नलिखित पाँच भेदों की कल्पना की है—(१) वाचना (२) प्रच्छना (३) अनुप्रेक्षा (४) आम्नाय (५) धर्मोपदेश।

व्युत्सर्ग—गृह, धनादि बाह्य उपाधियों तथा क्रोधादि अंतरंग उपाधियों का त्याग करना व्युत्सर्ग तप कहलाता है। इस प्रकार बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से इसके भी दो भेद माने गए हैं।

(८) **उत्तम त्याग**—दान देना, त्याग की भूमिका पर आना, शक्त्यानुसार भूखों को भोजन, रोगी को औषधि, अज्ञान निवृत्ति के लिए ज्ञान के साधन जुटाना और प्राणीमात्र को अभय देना, देश और समाज के लिए तन-मन आदि का त्याग आदि उत्तम त्याग के अन्तर्गत माना जाता है। समस्त पर-द्रव्यों से मोह छोड़कर संसार, देह और भोगों से उदासीन रहकर सत्पुरुषों की सेवा करना ही उत्तम त्याग माना गया है। लाभ, पूजा और ख्याति आदि से किया जाने वाला त्याग या दान उत्तम त्याग नहीं है।

(९) **उत्तम आकिंचन्य**—आंतरिक विभाव तथा बाह्य पदार्थों में ममत्व का त्याग उत्तम आकिंचन्य कहलाता है। धन-धान्य आदि बाह्य परिग्रह तथा शरीर में यह मेरा नहीं है,आत्मा का धन तो उसके चैतन्य आदि गुण हैं। 'नास्ति मे किंचन' मेरा कुछ नहीं है, आदि भावनायें आकिंचन्य हैं।

भौतिकता से हटकर विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त करना आकिंचन्य धर्म है। दूसरे शब्दों में किसी भी वस्तु में ममत्व बुद्धि न रखना उत्तम आकिंचन्य है।

(१०) **उत्तम ब्रह्मचर्य**—अध्यात्म-मार्ग में ब्रह्मचर्य को सर्वप्रधान माना जाता है क्योंकि ब्रह्म में रमणता वास्तविक ब्रह्मचर्य है। इसके अन्तर्गत क्रोधादि निग्रह के भाव का भी अन्तर्भाव होता है। वस्तुतः ब्रह्मचर्य का तात्पर्य वीर्य की रक्षा करना है। वीर्य की रक्षा करने के लिए बहुत बड़े संयम की आवश्यकता पड़ती है, अतः जैनाचार्यों ने इसे उत्तम तप कहा है। इसका आवश्यक रूप से जीवन में आचरण करने के लिए पाँच महाव्रतों में स्थान दिया गया है तथा दश धर्मों में इसे उत्तम धर्म की संज्ञा दी गई है। कुंदकुंदाचार्य ने ब्रह्मचर्य को उत्तम धर्म मानकर इसका निम्नलिखित स्वरूप स्पष्ट किया है।

सव्वंग पेच्छतो इत्थीणं तासु भुयदि दुब्भावम्।
सो ब्रह्मचर्य भाव सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि ॥[12]

अर्थात् जो स्त्रियों के सारे सुन्दर अंगों को देख कर उनमें रागरूप दुर्भाव करना छोड़ देता है, वही दुर्द्धर ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करता है।

पद्मनन्दि पंचबिशतिका में कहा गया है—

आत्मा ब्रह्म विविक्त गोधनिलयो च तत्र चर्मपर, स्वांगा संग-विर्वाजितैकमनसस्तद् ब्रह्मचर्य मुनेः।[13]

अर्थात् ब्रह्म शब्द का अर्थ निर्मल ज्ञानस्वरूप आत्मा है। उस आत्मा में लीन होने का नाम ब्रह्मचर्य है। जिस मुनि का मन अपने शरीर के भी सम्बन्ध में निर्ममत्व हो चुका है, उसी को ब्रह्मचर्य होता है।

जैनाचार्यों के अनुसार ब्रह्मचर्य के नव अंग हैं—(१) स्त्रियों का संसर्ग न करना (२) स्त्री कथा न करना, (३) स्त्रियों के स्थान का सेवन न करना, (४) स्त्रियों के मनोहर अंगों को न देखना, न ध्यान देना, (५) कामोद्दीपक भोजन न करना, (६) आहार-पान मात्रा से अधिक न करना, (७) पूर्वकृत कामक्रीड़ा का स्मरण न करना, (८) स्त्रियों के शब्द, रूप व सौभाग्य की सराहना न करना और (९) इन्द्रिय सुखों की अभिलाषा न करना।

उपर्युक्त दस धर्म आत्मा के लिए कल्याणकारक माने गये हैं तथा उनके साथ 'उत्तम' विशे-

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

षण का प्रयोग इष्ट प्रयोजन की निवृत्ति के अर्थ में किया गया है।[14]

ख्याति और पूजा आदि की भावना की निवृत्ति के अर्थ में उत्तम विशेषण दिया गया है।[15] अर्थात् ख्याति पूजादि के अभिप्राय से ग्रहण की गई क्षमादि उत्तम नहीं है।

जहाँ तक सामाजिक चरित्र के नैतिक उत्थान में जैन धर्म के उपर्युक्त दस लक्षणों की प्रासंगिक उपयोगिता का प्रश्न है, इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि धर्म का एक पहलू सामाजिक चरित्र के नैतिक उत्थान भी रहा है। सामाजिक नैतिकता के मूल्य जब-जब विस्थापित हुए हैं, अमानवीय व्यवहारों की प्रचुरता बढ़ी है तब-तब उसे धर्म के द्वारा ही मर्यादित किया गया है। आज भी जैन धर्म के दसों लक्षणों की उपयोगिता ज्यों की त्यों बनी हुई है, क्योंकि आज समाज में आतंकवाद, बलात्कार, चोरी, डकैती, लूटपाट आदि दुर्गुणों से नैतिक मूल्यों का प्रायः ह्रास हो गया है जिसकी पुनर्स्थापना जैन धर्माचरण से ही सम्भव है।

आज के मनुष्य क्रोधी, दम्भी, घमंडी, झूठ बोलने वाले हो गये हैं। क्षमाधर्म के द्वारा क्रोध को बहुत हद तक समाप्त किया जा सकता है। क्रोध के शमन से समाज के बहुत से दोष स्वतः निराश्रित हो जाते हैं। अहिंसा की भावना जागृत होती है तथा समाज में कोढ़ के रूप में व्याप्त आतंकवाद स्वतः समाप्त हो जाता है। अभिमान का त्याग कर उत्तम मार्दव धर्म के द्वारा आसानी से समाज में मृदुता कोमलता विनम्रता आदि भावों का प्रसार किया जा सकता है। आज समाज में दोहरे व्यक्तित्व जीने वालों की संख्या बढ़ रही है जिससे समाज में शंका एवं सन्देह का बोलवाला होता जा रहा है। एक-दूसरे पर विश्वास करना अत्यन्त कठिन हो गया है। इस दोष का निरसन आर्जव धर्म से ही सम्भव है। इसी प्रकार समाज में बढ़ती हुई लोभ प्रवृत्ति, असत्य भाषण, असंयम का परिहार क्रमशः शौच, सत्य और संयम से ही सम्भव है।

आज दुनिया मे सौ में निन्यानवे अपराधी घटनाओं का कारण अर्थ या काम होता है। अदना-सी बात पर कौड़ी तक का मूल्य नहीं रखने वाली चीजों के लिए भी लोग हिंसा पर उतारू हो जाते हैं, मनुष्य ही मनुष्य की जान का ग्राहक बन गया है। इन मलिन वृत्तियों का विनाश आज भी उत्तम तप और ब्रह्मचर्य नामक धर्म से किया जा सकता है।

समाज में व्याप्त भुखमरी, रोग, अज्ञान की निवृत्ति उत्तम त्याग के द्वारा ही सम्भव है। वास्तविक आनन्द शारीरिक सुखों में या भौतिक सुविधाओं के अनन्त साधनों को एकत्रित करने में नहीं मिलता। इसकी प्राप्ति मोहमाया के बीच सम्भव नहीं है। भोगतृप्ति राह के प्रत्येक मोड़ पर मनुष्य ठगा जाता है। शाश्वत आनन्द की प्राप्ति भौतिकता से हटकर विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिपात करने तथा किसी वस्तु में ममत्व बुद्धि न रखते हुए उत्तम आकिंचन्य धर्म-पालन करने में ही है।

टिप्पण-सन्दर्भ

१. जैन दर्शन—डा० महेन्द्र कुमार जैन, पृष्ठ—२३६
२. महापुराण—२३७
३. तत्त्वार्थ सूत्र—६/६
४. उत्तराध्ययन सूत्र—२५/२४
५. गोम्मटसार (जीवकाण्ड), गाथा—४६५
६. पं० सुखलाल संघवी—त० सू० टीका, पृष्ठ ३०५
७. वही
८. देखें जैन धर्म सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. ६१—६५
९. तत्त्वार्थ—सूत्र ९/१९
१०. तत्त्वार्थ सूत्र—९/२०
११. तत्त्वार्थ सूत्र—९/२२
१२. बारस अणुवेक्खा—८०
१३. प० वि०—१२/२
१४. सर्वार्थसिद्धि—९/६
१५. चारित्र सार—५८/१

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org